उपसंहार

भारत की सांस्कृतिक परंपरा का सुदीर्घ अतीत रहा है। यह परंपरा प्रत्येक युग में अपने जीवन्त स्वरूप को सुरक्षित रखती रही है। जीवन दर्शन का मुख्य आधार ही 'संस्कृति' है। मानव के ज्ञान और क्रिया शक्ति में जैसे जैसे विकास होता है, वैसे वैसे संस्कृति का भी विकास होता है। साहित्य, दर्शन, धर्म, विज्ञान, कला, राज्य, शासन आदि क्षेत्रों का साथ–साथ अध्ययन ही इस विकास प्रक्रिया को स्पष्ट करता है। साहित्य मानव–जीवन तथा मानव–समाज की सर्वांगीण व्याख्या का एक सशक्त माध्यम है। इसी कारण उसमें संस्कृति की अभिव्यक्ति भी हुआ करती है। आजकल के साहित्य में निरे यथार्थ का चित्रण प्रस्तुत कर, जीवन से साहित्य की ओर ले चलने की जो प्रवृत्ति पायी जाती है, उसमें आल्वार संतों तथा अष्टछाप कवियों का काव्य मानव जीवन में भक्ति की आवश्यकता का संदेश देता है। भक्ति काव्य का प्रभाव वर्तमान साहित्य की भांति क्षणिक न होकर शाश्वत बना रहता है। भारतीय जन–जीवन आज जिन अनेक धाराओं के मध्य प्रवाहित होता दिखाई पड़ता है, उनका मूल उद्‌गम लोक संस्कृति है। कृत्रिमता के वातावरण से दूर लोक संस्कृति अपने जिस आकर्षक रूप को लेकर जी रही है, शिष्ट संस्कृति उस सौंदर्यानुभूति का संस्पर्श भी नहीं कर सकती। जहाँ तक हमारे देश का संबंध है, धर्म और आध्यात्मिकता के क्षेत्र में उल्लेखनीय परिवर्तन दृष्टिगोचर होते रहे हैं तथा इनका विकास होता रहा है। यद्यपि कभी–कभी राजनैतिक एवं बाह्य कारणों से उसके स्वरूप में भी परिवर्तन हुआ है।

'भक्ति द्रविड उपजी' इस कथन को चरित्रार्थ करने वाले आल्वार संतों के यहाँ कृष्ण के मंगल की कामना की गई है। यह घटना 5वीं से 9वीं शताब्दी की है। जब भक्ति काल देवता को मनुष्य बनाने में लगा हुआ था। दक्षिण भारत में भक्ति आंदोलन के उद्‌भव के कारणों में इस्लाम की कोई भूमिका नहीं हैं, उससे कोई विरोध ही नहीं है। विरोध तो शंकराचार्य की दार्शनिक परंपरा से है। अगर कोई सांस्कृतिक आंदोलन खड़ा हुआ, तो वह बिना किसी राजनैतिक आंदोलन की शरण लिए नहीं खड़ा हो सकता। विचारधारा के लिए उस समय मार्क्सवाद नहीं था, पूंजीवाद नहीं था। विचारधारा के रूप में वहाँ धर्म था। बौद्ध

धर्म की तब प्रगतिशील भूमिका थी। बौद्ध धर्म की दार्शनिक मान्यताओं से प्रचलित युग धर्म को समस्या थी। सवर्ण समाज की सत्ता गायब हो रही थी। बुद्ध ने उसकी जड़ों को हिलाकर रख दिया था। जो दास थे, बुद्ध की शरण में जाकर समानता को प्राप्त कर रहे थे। बुद्ध ने सारी चीजों को संशय में डाल दिया । इस देश में जन्म लेने वाला धर्म, भारत का सबसे महान शासक तक उस धर्म को अंगीकार करता है। उसके लिए विदेशों तक लोगों को भेजता है। वह धर्म बर्मा में पाया जाता है, तिब्बत में पाया जाता है, श्रीलंका में पाया जाता है, चीन में पाया जाता है, कम्बोडिया में पाया जाता है, किंतु भारत से वह धर्म एकदम गायब हो जाता है। ब्राह्मणवादी विचारधारा बौद्धों को उन्हीं की पद्धति से धराशायी कर देती है।

किसी भी दार्शनिक विचारधारा को समझने के लिए उसकी सामाजिक संरचना का ज्ञान महत्त्वपूर्ण है। दर्शन के साथ–साथ सामाजिक ताने–बाने का कोई भी दार्शनिक चिंतन वहाँ की सामाजिक परंपरा के अनुरूप ही पनपता है। सुवीरा जायसवाल देवताओं की आवाजाही के विषय में व्याख्या करती हैं। जो देवता कभी असुरों के देवता हुआ करते थे, उनकी वैदिक देवताओं में गिनती होने लगी। सोम देव तो हैं, किंतु उनकी प्रवृत्ति आसुरी है, इसी तरह देवताओं का निर्धारण होता रहा है। शैव और वैष्णव परम्परा में, शिव की जो आराधना वैष्णव करते हैं, वो आर्य परंपरा के शिव हो सकते हैं। द्रविड़ परम्परा के शिव बिल्कुल अलग हैं, वह गरल शिव हैं, विषाक्त शिव हैं। दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि शक्ति के नियंता विष्णु है। वह अवतार धारण करते हैं। उनके दशावतारों का उल्लेख होता है। विष्णु, शिव से अलग हैं। शिव और विष्णु का द्वंद है। इनकी उपासना करने वालों में मतभेद है। एक तो विष्णु को मानते हैं और दूसरा शिव को मानते हैं। भक्ति आंदोलन की उपज का मुख्य दार्शनिक आधार शैव दर्शन है, लेकिन जब यह सांस्कृतिक रूप ग्रहण करता है या दार्शनिक रूप ग्रहण करता है, तब उसका कायांतरण या रूपांतरण वैष्णव में हो जाता है। राम और कृष्ण, देवता उभरते है। राम की मर्यादित छवि का चित्रण होता है। कृष्ण लोकरंजक देवता के रूप में सामने आते है। यह लोक के हृदय पर अनूठी सत्ता कायम करते है। सूर के शब्दों में 'अब कैसेहु निकसत नहीं ऊधौ, तिरछे ह्वै जो अडे' गोपियों की भांति, यही स्थिति आल्वार संतों की है।

भारतीय भक्ति आंदोलन का इतिहास अत्यंत व्यापक है। भारत की भावात्मक एकता को सुदृढ़ बनाये रखने में भक्ति का प्रमुख हाथ है। भारतीय भक्ति भावना के विकास में उत्तर, दक्षिण, पूर्व एवं पश्चिम के विभिन्न भक्त कवियों ने महत्त्वपूर्ण योग दिया है। जिस समय उत्तर भारत में वेद, उपनिषद् आदि से प्रभावित वैदिक धारा प्रवाहित हो रही थी। उसी समय दक्षिण में, द्रविड़ संस्कृति में पोषित तमिल भक्ति धारा विकास पा रही थी। वैदिक काल से चली आती हुई भक्ति की धारा, जैन, बौद्ध आदि नास्तिक मतों के प्रभाव से क्षीण होकर, ईसा की आरम्भिक शताब्दियों में दक्षिण पहुँची। जब यह मान लिया जाता है, कि संसार परिवर्तनशीन है, यह प्रतिक्षण बदलता है, जन्म है तो मृत्यु अवश्य होगी। तब एक निराशावादी भाव अंतःकरण में उत्पन्न होता है। इसी निराशावादी अवधारणा की प्रतिक्रिया स्वरूप कालान्तर में भक्ति की धारा, जिसने सामान्य जन के मन में आशा का संचार किया, तमिल प्रान्त के वैष्णव भक्त कवियों 'आल्वारों' के मधुर पदों में अपनी पूर्ण शक्ति के साथ प्रकट हुई। आल्वारों ने दक्षिण प्रदेश में घूम–घूम कर भक्ति गीत गाए। ये निर्विवाद सत्य है कि इन भावुक भक्त कवियों ने अपने पद–साहित्य से तत्कालीन जनता को मानसिक शांति प्रदान कर भक्ति रस का आस्वादन कराया। साथ ही, उत्तर भारत में छः शताब्दियों पश्चात् उभरने वाले भक्ति आंदोलन को तथ्य प्रदान किये।

भक्ति की यह धारा वैदिक युग से ही प्रवाहित मानी जाती है। भक्ति के उद्‌भव और विकास के विषय में विद्वानों के मत–मतांतर होने पर भी। इतना अवश्य मानना पडेगा कि भारतीय भक्ति साधना के क्रमिक विकास में तमिल भाषा और तमिल प्रदेश का महत्त्वपूर्ण योग है। तमिलों की धार्मिक भावना विकास को पाकर ईसा पूर्व अनेक शताब्दियों से एक सुदृढ़ भक्ति परंपरा का रूप धारण कर चुकी थी। आज भारतीय भक्ति साहित्य में वैष्णव भक्ति का जो स्वरूप दृष्टिगोचर होता है, वह बहुत कुछ आल्वारों की देन है। आल्वारों का ही प्रभाव विभिन्न आचार्यों के माध्यम से हिंदी प्रदेश तक पहुँचा।

कृष्ण के जिस रूप की अष्टछाप के कवियों ने प्रतिष्ठा की है। वह रसिक शिरोमणि विष्णु रूप है। जबकि आल्वारों के कृष्ण परब्रह्म का स्वरूप है। उत्तरी शाखा के अनुसार ईश्वर की कृपा प्रयत्न से ही प्राप्त हो सकती है, परंतु दक्षिण शाखा उसे अप्रयत्नज मानती है। इस

सैद्धांतिक भेद के कारण ही भक्ति ज्ञान और कर्म–तत्त्व से प्रभावित हुई। मार्जार और मर्कट न्याय के आधार पर दक्षिण और उत्तरी भक्ति शाखा का स्वरूप मिलता है। आल्वार संतों एवं अष्टछाप कवियों के अस्तित्व के मध्य कई शताब्दियों का अंतराल होने पर भी उन दोनों के उद्देश्य, कार्य क्षेत्र एवं प्रचार माध्यमों प्रधानतः पद साहित्य में स्पष्ट समानता मिलती है।

कृष्ण का दार्शनिक विवेचन जितना पेरियाल्वार ने किया है उतना सूरदास ने नहीं। उनके बालकृष्ण जग का कल्याण करते हैं। पेरियाल्वार और सूरदास ने बालकृष्ण की विभिन्न चेष्टाओं का सरस और सजीव वर्णन करके तमिल और हिंदी साहित्य में वात्सल्य रस की अमर धारा प्रवाहित की है। पेरियाल्वार के प्रबंधम् 'पेरियाल्वार तिरुमोलि' और सूरदास के 'सूरसागर' में दक्षिण और उत्तर संस्कृति की छाप मिलती है। सूरदास ने यह अनुभव कराया है कि कृष्ण हम सबके बीच है और वह जन जन के हैं और हमारे सुख–दुख में हमारे साथ है। पेरियाल्वार यह कामना करते हैं कि कृष्ण को किसी प्रकार का दुख न हो। सूर ने अपने कृष्ण को सखा के रूप में देखा है और पेरियाल्वार अपने कृष्ण को पुत्र के रूप में देखते हैं तथा स्वयं को उनकी माता के रूप में प्रस्तुत करते हैं। सूरदास की सौंदर्य चेतना अत्यंत सजग और भाव प्रधान है। इन्होंने मानवीय सौंदर्य तथा प्राकृतिक सौंदर्य का अद्भुत चित्रण है।

कथाओं और आख्यानों को गीति शैली में ढ़ालने का श्रेय आल्वारों में तो सबसे अधिक पेरियाल्वार को और अष्टछापियों में प्रमुख रूप से सूरदास को है। पेरियाल्वर के वात्सल्य वर्णन में अद्भुत प्रतिभा के दर्शन होते हैं। उन्होंने कृष्ण की बाल लीला, गोदोहन, गोचारण, गोवर्द्धन धारण, नाग लीला, रास लीला जैसे प्रसंगों का सुंदर और वर्णनात्मक चित्रण करने के साथ तथा राम लीला का भी गायन किया है। इसी प्रकार सूरदास ने श्रीमद्भागवत के प्रसंगों का आख्यानात्मक वर्णन प्रस्तुत किया है। सूर की मानसिक स्थिति सदा कृष्ण के लीला पदों का गायन करने में संतुष्ट रही है। पेरियाल्वार ने लीला वर्णन के प्रत्येक पद के अंतिम चरण या अंतिम दो चरणों में कृष्ण के परमेश्वरत्व का उल्लेख किया है। आल्वार को कृष्ण की आलौकिकता एवं सर्वभौमिकता भाति थी। अष्टछाप कवियों में सूरदास का सामूहिक उल्लास के चित्रण अद्भुत है और आल्वारों में पेरियाल्वार का।

आल्वारों के भक्ति काव्य में समाज का वर्णन मिलता है। आल्वारों ने वैष्णव भक्ति का प्रचार घूम–घूम कर किया, जिससे धार्मिक और सामाजिक जीवन प्रभावित हुआ। मंदिर निर्माण और मूर्ति पूजा तमिल प्रदेश की प्राचीन धार्मिक देन थी। आल्वारों ने संगीत–कला को महत्त्वपूर्ण भेंट दी। धार्मिक अवसरों पर आल्वारों के पदों का गायन होता है। विभिन्न राग–रागनियों में गाने योग्य आल्वारों के कीर्तनों ने जनता पर अमिट प्रभाव डाला है। आल्वारों की भक्ति ऐसी भक्ति थी जिसने ब्राह्मण धर्म को हिंदू धर्म में परिवर्तित कर दिया। अतः यह दक्षिण भारत की महत्त्वपूर्ण देन मानी जा सकती है।

वर्तमान समय में देश में धार्मिक, जातिगत, भाषागत आदि अनेक समस्याएं उठ खड़ी हुई है। जो विदेशी तथा देशी संकुचित विचार और कूटनीति का परिणाम है। अन्य कारण यह भी हो सकता है कि भारत के अंगभूत अन्यान्य प्रान्तों के नागरिको में अपरिचित जन्य अविश्वास, संदेह, कुण्ठा आदि है, जो एक को अनेक में बांट कर ईर्ष्या, द्वेष का शिकार बनाते हैं। देश की वर्तमान परिस्थितियों की दृष्टि से इस प्रकार के तुलनात्मक अध्ययन की नितांत आवश्यकता है। आधुनिक युग में एक ही भाषा तथा उनके साहित्य का अध्ययन करने से भारत की मूलभूत एकता प्रतिभाषित नहीं होती। एक साहित्य का दूसरे साहित्य के साथ तुलनात्मक अध्ययन करने से भारत की भावात्मक एकता का सम्यक परिचय होता है।

आल्वार संत और अष्टछाप कवि, दोनों शैली के ये भक्त, महापुरुष, आशु कवि, कुशल संगीतज्ञ एवं अनन्य साधक थे। आल्वारों की भक्ति धारा ने अष्टछापियों की काव्य धारा को दिशा निर्दिष्ट कर प्रभावित किया है। ये भक्ति की साधना को एकमात्र लक्ष्य मानते हुए जनसाधारण का मानसिक क्लेश दूर कर परम शक्ति प्रदान करने के लिए अपने पद साहित्य का गायन किया करते थे। काव्य रचना इनका उद्‌देश्य नहीं था। वर्तमान में इनकी प्रासांगिकता का कारण है इनकी साधना पद्धति, काव्य रसिक, भक्त, विद्वान एवं साहित्यकार इनकी काव्य धारा का पठन–पाठन किया करते हैं। वर्तमान भाषा में हम इन भक्त कवियों को मनोचिकित्सक कह सकते हैं।

दोनों समूहों के भक्त कवियों ने धर्म से वर्ग विशेष का एकाधिकार समाप्त करने के लिए पर्याप्त परिश्रम किया। जाति, संप्रदाय, वर्ण तथा लिंग भेद के बिना समान्य जन के लिए भक्ति का द्वार उन्मुक्त कर दिया। इनकी रचनाओं के पठन–पाठन और गायन–श्रवण से भेद भावनाओं से परे मानव मन स्वस्थ बनता है तथा उसमें संपूर्ण अशुभ व अहित का न्यायोचित प्रतिरोध करने की शक्ति उत्पन्न होती है। सारांशतः कह सकते हैं कि इन कवि वृंदों का मूल संदेश है मानव मात्र की कल्याण साधना और सामाजिक न्याय की प्रतिष्ठा करना। यह संदेश उनके रचना काल में जितना संभव रहा उससे कई गुना अधिक वर्तमान के लिए संगत व आवश्यक है।